जैन

नैतिक शिक्षा

JAIN MORAL EDUCATION

तृतीय–भाग

(PART - III)

डॉ. बी.सी. जैन

जैन

नैतिक शिक्षा

(JAIN MORAL EDUCATION)

तृतीय-भाग

(PART-III)

लेखक एवं सम्पादक

डॉ. बी. सी. जैन, जयपुर

प्रकाशक

जैन पाठशाला समिति, जयपुर

संस्करण : 1000 प्रतियाँ (15 जुलाई 2016)
कृति : जैन नैतिक शिक्षा (तृतीय-भाग)
लेखक एवं सम्पादक : डॉ. बी. सी. जैन

मूल्य : ₹16/-

प्रकाशक : शिखर श्रुत संवर्धन समिति, जयपुर
केन्द्रीय कार्यालय : 164/267, हल्दी घाटी, मार्ग
प्रताप नगर, जयपुर - 302033
मो. 89555872717, shikhar.shrutsamvardhan@gmail.com

Printed by : Pixel 2 Print, Jaipur (Hemant Jain)
Cell : 9509529502, pixel_2_print@yahoo.com

विषय सूची

	दर्शन पाठ	5
1.	पंच परमेष्ठी	6
2.	तत्त्व	9
3.	अष्ट मूलगुण	11
4.	रत्नत्रय	13
5.	कर्म	16
6.	रक्षा बन्धन	21
7.	गति	24
8.	जम्बू स्वामी	26
9.	समुच्चय पूजन	27
10.	बारह भावना	31

आभार

इस कृति में जिन आचार्यों, विद्वानों की रचनाओं का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से समावेश किया गया है, उनका हृदय से आभार ज्ञापित करते हैं। - सम्पादक

प्रकाशकीय

जैन धर्म विश्व का एक मात्र वैज्ञानिक धर्म है जिसके सिद्धान्त वस्तु स्वरूप का सम्यक् प्रतिपादन करने में समर्थ हैं। जैन धर्म के मूल सिद्धान्तों को सरल, सुबोध, रोचक शैली में समझाने के उद्‌देश्य से जैन नैतिक शिक्षा भागों की क्रमबद्ध शृंखला प्रकाशित कर रहे हैं। भौतिकवादी युग में भोग-विलासवादी पाश्चात्य संस्कृति ने न केवल जैनों को अपितु सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति को अपने प्रभाव में ले लिया है जिसके परिणाम स्वरूप शाकाहारी व्यक्ति अपना शुद्ध भोजन छोड़कर अभक्ष्य भक्षण कर रहे हैं। बच्चे एवं युवा धार्मिक एवं नैतिक संस्कारों से दूर होते जा रहे हैं, कम्प्यूटर एवं मोबाईल ने मानसिक शांति भंग कर दी है, प्रतिस्पर्द्धा की इस अंधी दौड़ में हम अपने अस्तित्व को नष्ट करते जा रहे हैं।

बच्चे हमारा भविष्य हैं अत: उनमें धार्मिक संस्कारों को बीजारोपित करना हमारा कर्तव्य है। शिखर श्रुत संवर्धन समिति ने इस कार्य की महत्ता को समझते हुए शिखर व्याख्यानमाला, धार्मिक शिक्षण शिविर तथा राष्ट्रीय स्तर पर जैन पाठशालाओं का संचालन कर ज्ञान की अलख जगाने का प्रयास किया है।

शिक्षण शिविरों, जैन विद्यालयों एवं जैन पाठशालाओं में अध्ययन कराने के उद्‌देश्य से जैन नैतिक शिक्षा पाठ्य पुस्तक अपनी पाठ्य सामग्री और रोचक प्रस्तुतिकरण के कारण सभी को प्रभावित करेगी। आधुनिक तकनीक का प्रयोग करते हुए प्रत्येक भाग के पाठों के विषयों को कम्प्यूटर के माध्यम से चलचित्र के रूप में भी प्रस्तुत किया गया है।

समिति के मंत्री तथा जैन पाठशाला के निदेशक, जैन दर्शन एवं भाषा के तलस्पर्शी युवा विद्वान् डॉ. बी.सी. जैन ने अथक प्रयास कर इन पुस्तकों को मूर्तरूप दिया है। श्रीमती प्रज्ञा जैन ने अपना बहुमूल्य समय देकर भागों के निर्माण में योगदान दिया। समिति के संयुक्त मंत्री श्री हेमन्त कुमार जैन ने भागों के प्रकाशनार्थ जो अथक प्रयास किया उसके लिये धन्यवाद देते हैं। आप सभी सुधी पाठकों के सुझाव सादर आमंत्रित हैं।

संजय सेठी
(अध्यक्ष)

डॉ. सनत कुमार जैन
(उपाध्यक्ष)

हमारे दैनिक कर्त्तव्य

- अभिवादन में जय जिनेन्द्र ही बोलें।
- सूर्योदय से पूर्व बिस्तर छोड़ने के बाद तथा सायं सोने से पूर्व एवं खाने से पूर्व नौ बार णमोकार मंत्र अवश्य बोलना चाहिए, इससे मन शुद्धि होती है।
- प्रतिदिन देव-दर्शन (मन्दिर जी) करना चाहिए।
- अभक्ष्य पदार्थ (पिज्जा, बर्गर, पेस्ट्री, केक, कोल्ड ड्रिंग्स, आलू बेफर्स, आईसक्रीम, चॉकलेट, आलू, प्याज आदि) नहीं खाने चाहिए इससे हिंसा से बचते हैं तथा स्वस्थ्य रहते हैं।
- रात्रि में भोजन नहीं करना तथा पानी छान कर पीना चाहिए।
- सभी से शिष्टाचार पूर्वक व्यवहार करना चाहिए।
- हमें हमेशा हित-मित-प्रिय मधुर वचन बोलना चाहिए।
- सभी लोगों का यथायोग्य सम्मान करना चाहिए।
- पाप (हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह) तथा कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ) को त्याग कर जीवन पवित्र बनाना चाहिए।
- हमेशा मन लगाकर पढ़ना चाहिए।
- जिनवाणी को कण्ठस्थ करना चाहिए इससे बुद्धि का विकास होता है।
- वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु के अतिरिक्त अन्य किसी कुदेवाादि को नमस्कार नहीं करना चाहिए। इससे जैन धर्म में दृढ़ता आती है।
- मैं कौन हूँ? भगवान कौन है? तथा मैं भगवान कैसे बन सकता हूँ, इसका चिंतन प्रतिदिन करना चाहिए।
- भगवान से हमें कोई लौकिक भोग सामग्री प्राप्ति की इच्छा नहीं करनी चाहिए, इससे पाप बन्ध होता है।

दर्शन पाठ (देव स्तुति)

दर्शन श्री देवाधिदेव का, दर्शन पाप विनाशन है।
दर्शन है सोपान स्वर्ग का, ओर मोक्षका साधन है।।1।।
श्री जिनेन्द्र के दर्शन औ, निर्ग्रन्थ साधु के वंदन से।
अधिक देर अघ नहीं रहैं, जल छिद्र सहित कर में जैसे।।2।।
वीतराग-मुख के दर्शन की, पद्मराग सम शांत-प्रभा।
जन्म-जन्म के पातक क्षण में, दर्शन से हों शांत विदा।।3।।
दर्शन श्री जिनदेव सूर्य, संसार-तिमिर का करता नाश।
बोधि-प्रदाता चित्तपद्म को, सकल अर्थ का करे प्रकाश।।4।।
दर्शन श्री जिनेन्द्रचन्द्र का, सद्धर्मामृत बरसाता।
जन्मदाह को करे शांत औ, सुख वारिधि को विकसाता।।5।।
सकल तत्त्व के प्रतिपादक, सम्यक्त्व आदि गुण के सागर।
शांत दिगम्बररूप, नमूँ, देवाधिदेव तुमको जिनवर।।6।।
चिदानन्दमय एकरूप, वंदन जिनेन्द्र परमात्मा को।
हो प्रकाश परमात्म नित्य, मम नमस्कार सिद्धात्मा को।।7।।
अन्य शरण कोई न जगत में, तुम्हीं शरण मुझको स्वामी।
करुण भाव से रक्षा करिये, हे जिनेश अन्तर्यामी।।8।।
रक्षक नहीं शरण कोई नहिं, तीन जगत में दुखत्राता।
वीतराग प्रभु-सा न देव है, हुआ न होगा सुखदाता।।9।।
दिन-दिन पाऊँ जिनवर भक्ति, जिनवर भक्ति, जिनवर भक्ति।
सदा मिले वह सदा मिले, जब तक न मिले मुझको मुक्ति।।10।।
नहीं चाहता जैनधर्म बिना, चक्रवर्ती होना।
नहीं अखरता जैनधर्म से सहित, दरिद्री भी होना।।11।।
जन्म-जन्म के किये पाप औ, बन्धन कोटि-कोटि भव के।
जन्म-मृत्यु औ, जरा रोग, सब कट जाते निजदर्शन से।।12।।
आज 'युगल' दृग हुए सफल, तुम चरण-कमल से हे प्रभुवर।
हे त्रिलोक के तिलक, आज लगता भवसागर चुल्लू भर।।13।।

पाठ – 1

पंच परमेष्ठी

(पंचपरमेष्ठी का सामान्य स्वरूप प्रथम भाग में पढ़ा है, अब यहाँ विशेष स्वरूप पढ़ेंगे।)

णमो अरहंताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्वसाहूणं।।

जो परम पद में स्थित हैं उन्हें परमेष्ठी कहते हैं। अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पाँच होने के कारण पंचपरमेष्ठी कहलाते हैं। णमोकार मंत्र को ही पंच नमस्कार मंत्र कहते है, इसमें पूर्ण वीतरागी और सर्वज्ञ अरहंत, सिद्ध भगवानों को तथा वीतरागी मार्ग पर चलने वाले साधुओं (आचार्य उपाध्याय एवं साधु) को नमस्कार किया गया है।

अरहंत परमेष्ठी – जो संसारी आत्मा गृहस्थपना त्याग कर, मुनि धर्म अंगीकार कर, निज स्वभाव साधन द्वारा चार घातिया कर्मों का क्षय करके अनंतचतुष्टय (अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख एवं अनंतवीर्य) रूप विराजमान हुए वे अरहंत परमेष्ठी हैं।

अरहंतों के 46 मूलगुण होते हैं। उनमें कुछ तो शरीर से सम्बन्ध रखते हैं और कुछ आत्मा से। छयालीस (46) गुणों में दस जन्म के अतिशय हैं (जो शरीर से

सम्बन्ध रखते हैं), दस केवलज्ञान के अतिशय हैं (बाह्य सामग्री से सम्बन्धित) तथा 14 देव कृत अतिशय (देवों द्वारा किये हुए)। ये सब तीर्थंकर अरहंतों के ही होते है, सामान्य अरहंतों के नहीं। आठ प्रतिहार्य भी बाह्य विभूति हैं। किन्तु अनंत चतुष्टय आत्मा से संबंधित गुण हैं। अत: वे सभी अरहंत के होते हैं। अत: निश्चय से वे ही अरहंत के गुण हैं। मन्दिर जी में हम समवशरण में विराजमान तीर्थंकर अरहन्तों की प्रतिमाओं के दर्शन करते हैं।

सिद्ध परमेष्ठी – अरहंत भगवान के चार घातिया कर्मों का नाश होने पर अनंतचतुष्टय प्राप्त होने के कुछ समय बाद चार अघातिया कर्मों का नाश होने पर समस्त पर द्रव्यों का सम्बन्ध छूट जाने पर जो जीव पूर्ण मुक्त हो गये हैं लोक के अग्र भाग में किंचित् न्यून पुरुषाकार विराजमान हो गये हैं, जिनके द्रव्य कर्म, भाव कर्म और नौ कर्म का अभाव होने से समस्त आत्मिक गुण प्रकट हो गये वे सिद्ध हैं। इनके आठ गुण कहे गये हैं–

समकित दर्शन ज्ञान, अगुरुलघु अवगाहना।
सूक्ष्म वीरजवान, निराबाध गुण सिद्ध के॥

1. क्षायिक समक्त्व 2. अनंतदर्शन 3. अनंतज्ञान 4. अगुरुलघुत्व 5. अवगाहनत्व, 6. सूक्ष्मत्व 7. अनंतवीर्य 8. अव्याबाध।

आचार्य परमेष्ठी – जो रत्नत्रय की अधिकता से मुनि संघ में प्रधान पद प्राप्त नायक हुए हैं तथा जो मुख्यपने तो निर्विकल्प स्वरूपाचरण में ही मग्न रहते हैं, पर कभी–कभी रागांश के उदय से करुणा बुद्धि हो तो धर्म के लोभी अन्य जीवों को धर्मोपदेश देते हैं, दीक्षा लेने वाले को योग्य जान दीक्षा देते हैं, अपने दोष प्रकट करने वाले को प्रायश्चित विधि से शुद्ध करते हैं, ऐसा आचरण करने

और कराने वाले को आचार्य कहते हैं। आचार्य के 36 मूलगुण होते हैं।

उपाध्याय परमेष्ठी - अनेक जैन आगम शास्त्रों के ज्ञाता होकर, मुनि संघ में पठन-पाठन कराते हुए आत्मस्वरूप में लीन रहते हैं, कभी-कभी कषायांश के उदय से यदि उपयोग वहाँ स्थिर न रहे तो उन शास्त्रों को स्वयं पढ़ते है, दूसरों को पढ़ाते हैं, वे उपाध्याय हैं। ये मुख्यत: द्वादशांग के पाठी होते हैं। उपाध्याय के 25 मूलगुण होते हैं।

साधु परमेष्ठी - आचार्य, उपाध्याय को छोड़कर अन्य समस्त जो मुनि धर्म के धारक हैं और आत्म स्वरूप में रहते हैं, बाह्य में 28 मूलगुणों को निरतिचार पालते हैं, समस्त आरंभ और परिग्रह से रहित होते हैं, सदा ज्ञान ध्यान में लीन रहते हैं, संसारिक प्रपंचों से सदा दूर रहते हैं, उन्हें साधु परमेष्ठी कहते हैं।

इस प्रकार पंच परमेष्ठी हमारे पूज्य हैं।

अभ्यास

प्रश्न 1. पंचपरमेष्ठी किसे कहते हैं?

प्रश्न 2. अरहंत और सिद्ध परमेष्ठियों का स्वरूप बताइये एवं इनमें अंतर स्पष्ट कीजिए?

प्रश्न 3. सामान्य साधुओं का स्वरूप बताकर आचार्य और उपाध्याय साधु का स्वरूप बताइये?

प्रश्न 4. अरहन्त भगवान के 46 मूलगुण बताइए?

प्रश्न 5. सिद्ध भगवान के कितने गुण हैं?

प्रश्न 6. पंच परमेष्ठी के ज्ञान एवं श्रद्धान से क्या लाभ है ?

पाठ – 2

तत्त्व

(अकलंक और निकलंक आपस में चर्चा करते हैं।)

निकलंक : जय जिनेन्द्र अंकलक! जिनवाणी में सभी जगह लिखा है और विद्वान् कहते हैं कि आत्मा, कर्मों के कारण संसार में परिभ्रमण कर रहा है।

अकलंक : जय जिनेन्द्र! यह तो सही है। जीव अपने स्वभाव को भूलकर पर पदार्थों में राग-द्वेष करता है और इसी से कर्म बन्ध होता है।

निकलंक : यह स्वभाव क्या है? और इसे कैसे प्राप्त कर सकते हैं?

अकलंक : वस्तु का मूल स्वरूप ही उसका तत्त्व या स्वभाव कहलाता है, इसे ही वस्तु का धर्म कहते हैं; जैसे – जीव का स्वभाव चेतनपना और अजीव का स्वभाव अचेतनपना है।

निकलंक : वस्तु का स्वभाव ही उसका तत्त्व या धर्म कहलाता है। यह तो समझ में आया लेकिन तत्त्व कितने होते हैं?

अकलंक : आचार्य उमास्वामी ने तत्त्वार्थसूत्र में लिखा है – **जीवाजीवास्त्रवबंध-संवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम्।** अर्थात् जीव, अजीव, आस्त्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। ये सात तत्त्व हैं।

जीव – जो जानता देखता व सुख-दुःख का अनुभव करता है, उसे जीव कहते हैं।

अजीव – जो जानता देखता नहीं है व सुख-दुःख का अनुभव नहीं करता, उसे अजीव कहते है।

आस्त्रव – आत्मा में शुभाशुभ कर्मों का आना आस्त्रव तत्त्व है।

बंध – कर्मों का आत्मा के प्रदेशों से बंधना, बंध तत्त्व है।

संवर – शुभाशुभ कर्मों का आना रुक जाना, संवर तत्त्व है।

निर्जरा – बंधे हुये कर्मों का एकदेश (क्रम-क्रम) क्षय (नष्ट) होना निर्जरा तत्त्व है।

मोक्ष - सम्पूर्ण कर्मों का क्षय (नष्ट) हो जाना, मोक्ष तत्त्व है।

सात तत्त्वों को एक नाव के उदाहरण द्वारा समझाते हैं-

नाव अजीव है, उसमें बैठा आदमी जीव है, दो छेदों द्वारा पानी का आना आस्रव, पानी का इकट्‌ठा होना बंध, पानी का आना रुक जाना संवर, क्रम-क्रम से पानी निकालना निर्जरा तथा सम्पूर्ण पानी निकल जाना मोक्ष तत्त्व है।

निकलंक : नाव तो समझ में आ गई, इसे आत्मा पर घटित करके स्पष्ट कीजिए।

अकलंक : आत्मा जीव है, शरीर अजीव है, शुभाशुभ कर्मों का आना आस्रव, आकर आत्म प्रदेशों से बंधना बंध है, कर्मों का आना रुक जाना संवर, क्रम-क्रम से कर्मों का क्षय होना निर्जरा, तथा सम्पूर्ण कर्मों का आत्मा से अलग होना मोक्ष तत्त्व है।

निकलंक : सात तत्त्व समझने से क्या लाभ है?

अकलंक : **'तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्'** अर्थात् जीवादि सात तत्त्वों का श्रद्धान ही सम्यग्दर्शन कहलाता है। जबतक इनका सच्चा स्वरूप पता नहीं होगा तब तक सम्यक् श्रद्धान नहीं हो सकता। तत्त्वों का ज्ञान कर स्व-पर (जीव-अजीव) का भेद-विज्ञान कर आत्म श्रद्धान करके हम रत्नत्रय को प्राप्त कर अनंत सुखी (मुक्त) हो सकते हैं।

अभ्यास

प्रश्न 1. तत्त्व किसे कहते हैं? भेद लिखिए।
प्रश्न 2. सात तत्त्वों की परिभाषा लिखिए ?
प्रश्न 3. आस्रव और बंध में क्या अंतर है?
प्रश्न 4. नाव का उदाहरण आत्मा पर घटित कीजिए ?
प्रश्न 5. तत्त्व समझने से क्या लाभ है ?
प्रश्न 6. हम सुखी कैसे हो सकते हैं ?
प्रश्न 7. निर्जरा और मोक्ष में क्या अन्तर है ?

पाठ – 3

अष्ट मूलगुण

ज्ञायक : जयजिनेन्द्र भाई दर्शन!

दर्शन : जयजिनेन्द्र! तुम कहाँ जा रहे हो?

ज्ञायक : डॉक्टर ने कल दवा दी थी और कहा था कि शहद या चीनी (शक्कर) की चासनी में मिलाकर खाना। अतः शहद लेने बाजार जा रहा हूँ।

दर्शन : क्या तुम शहद खाते हो? मालूम नहीं? यह तो अपवित्र पदार्थ है। मधु मक्खियों की गन्दगी है और बहुत से त्रस जीवों के घात से उत्पन्न होता है। इसे कदापि नहीं खाना चाहिए। एक बूँद शहद खाने में सात गाँवों को जलाने के बराबर पाप लगता है, ऐसा जिनवाणी में लिखा है।

ज्ञायक : हम तो साधारण जैनी हैं, सबकुछ खाते हैं।

दर्शन : साधारण जैनी को भी अष्ट मूलगुण का धारी और सप्त व्यसन का त्यागी होना चाहिए। मधु (शहद) का त्याग अष्ट मूलगुणों में आता है।

ज्ञायक : मूलगुण किसे कहते हैं? और अष्ट मूलगुण में क्या-क्या आता है?

दर्शन : निश्चय से तो समस्त पर-पदार्थ से दृष्टि हटाकर अपनी आत्मा में श्रद्धा, ज्ञान और लीनता ही श्रावक के मूलगुण हैं। पर व्यवहार से मद्य त्याग, मांस त्याग, मधु त्याग और पाँच उदुम्बर फलों के त्याग को अष्ट मूलगुण कहते हैं।

ज्ञायक : मधु त्याग तो शहद के त्याग को कहते हैं, पर मद्य त्याग किसे कहते हैं?

दर्शन : शराब आदि नशा कारक वस्तुओं के सेवन का त्याग करना मद्य त्याग है। यह पदार्थों को सड़ा-गलाकर बनाई जाती है, अतः इसके सेवन से लाखों जीवों का घात होता है तथा नशा उत्पन्न करने के कारण विवेक समाप्त होने के कारण आदमी पागल सा हो जाता है, अतः इसका त्याग करना भी अति-आवश्यक है।

ज्ञायक : मद्य और मधु तो समझे, लेकिन मांस त्याग क्यों आवश्यक है? तथा अण्डे को तो शाकाहारी कहते हैं?

दर्शन : तुम अज्ञानी जैसी बात कर रहे हो। क्या अण्डे पेड़ पर उगते हैं? जो

वह शाकाहारी कहलायेगा। अण्डा भी मांसाहारी ही है। त्रस जीवों के घात के (हिंसा) बिना मांस की उत्पत्ति नहीं होती तथा मांस में निरंतर त्रस जीवों की उत्पत्ति भी प्रति समय होती रहती है। अत: मांस खाने वाला असंख्य त्रस जीवों का घात करता है। इसके परिणाम क्रूर होते हैं। आत्म हित के इच्छुक प्राणी को मांस का सेवन कदापि नहीं करना चाहिए।

ज्ञायक : उदुम्बर फल किसे कहते हैं?

दर्शन : बड़ फल, पीपल फल, ऊमर फल, कठूमर फल और पाकर फल इन पाँच जाति के फलों को उदुम्बर फल कहते हैं। इन फलों के बीच में अनेक सूक्ष्म स्थूल त्रस जीव पाये जाते हैं, अत: प्रत्यके व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह इन्हें भी ना खावे एवं बाजार में बिकने वाले आधुनिक खाद्य पदार्थ जैसे- केक, पेस्ट्री, मैगी, पिज्जा, बर्गर, कुरकुरे आदि विभिन्न प्रकार के पदार्थों के बनाने में हिंसक पदार्थों का उपयोग किया जाता है, अत: इनका भी त्याग करना चाहिए।

ज्ञायक : हमने सुना है कि सम्यग्दर्शन के बिना इन सब का त्याग कार्यकारी नहीं है, अत: हमें पहले तो आत्मज्ञान करना चाहिए न?

दर्शन : सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चारित्र तो सच्चा मुक्ति का मार्ग है ही, पर यह बताओं कि असदाचारी को भी सम्यग्दर्शन हो सकता है क्या? नहीं न। अत: आत्म-कल्याण की भावना रखने वाले को अष्टमूलगुण धारण कर जीवन को पवित्र बनाना चाहिए।

अभ्यास

प्रश्न 1. अष्ट मूलगुणों के नाम बताइए ?

प्रश्न 2. हमें शहद क्यों नहीं खाना चाहिए ?

प्रश्न 3. मूलगुण किसे कहते हैं ? भेद लिखिए।

प्रश्न 4. हमें बाजार की वस्तुएं क्यों नहीं खाना चाहिए ?

प्रश्न 5. पांच उदुम्बर फलों के नाम बताइए ?

प्रश्न 6. शाकाहार पर अनुच्छेद लिखिए ?

प्रश्न 6. बाजार में मिलने वाली बीस अभक्ष्य वस्तुओं के नाम बताइए।

पाठ – 4

रत्नत्रय

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः। अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकरूपता ही मोक्षमार्ग है। इसे ही रत्नत्रय कहते हैं।

सम्यग्दर्शन – सच्चे वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु के श्रद्धान (आस्था) को सम्यग्दर्शन कहते हैं। सम्यग्दर्शन के दो भेद हैं-निश्चय सम्यग्दर्शन और व्यवहार सम्यग्दर्शन। छहढाला की तीसरी ढाल में पं. दौलतराम जी लिखते हैं –

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन, शिव-मग सो दुविध विचारो।
जा सत्यारथ-रूप सो निश्चय, कारन सो व्यवहारो॥

आत्मा को परद्रव्य से भिन्न श्रद्धान (आस्था) करना निश्चय सम्यग्दर्शन कहलाता है तथा सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का और सातों तत्त्वों का यथार्थ श्रद्धान करना व्यवहार सम्यग्दर्शन है।

सम्यग्दर्शन की उपयोगिता – सम्यग्दर्शन धर्मरूपी पेड़ की जड़ है। जड़ के बिना पेड़ नही ठहरता, वैसे ही सम्यग्दर्शन के बिना धर्म-रूपी वृक्ष नहीं बढ़ता है। इसलिए आत्म-कल्याण के लिए सबसे पहले सम्यग्दर्शन प्राप्त करना आवश्यक है।

सम्यग्दर्शन की महिमा – सम्यग्दर्शन सहित जीव स्वर्ग का देव या भोगभूमि की मनुष्य गति में उत्पन्न होता है, स्त्री पर्याय, पहले नरक को छोड़ अन्य छह नरकों में, भवनत्रिक, स्थावर, विकलत्रय, पशु, नपुंसक, अल्पायु, निर्धन, हीनाङ्ग, पक्षी और नीचकुली (नीच कुल) में भी जन्म नहीं लेता।

सम्यग्ज्ञान – संशय विपर्यय एवं अनध्यवसाय दोषों से रहित वस्तु के सम्यक् स्वरूप का ज्ञान करना सम्यक् ज्ञान है। इसके दो भेद हैं –निश्चय सम्यग्ज्ञान और व्यवहार सम्यग्ज्ञान।

आत्मा को पर द्रव्यों से भिन्न जानना, निश्चय सम्यग्ज्ञान कहलाता है तथा पदार्थों के स्वरूप को जैसा का तैसा जानना, उसमें किसी प्रकार का दोष नहीं होना व्यवहार

सम्यग्ज्ञान कहलाता है।

सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति और उपयोगिता – सम्यग्ज्ञान होने के पहले जो ज्ञान मिथ्या था, सम्यग्दर्शन होने पर वही ज्ञान सम्यग्ज्ञान कहलाने लगता है। सम्यग्ज्ञान से ही आत्म-ज्ञान और केवलज्ञान प्राप्त होता है।

सम्यग्ज्ञान की महिमा – सम्यग्ज्ञान होने पर त्रिगुप्ति (मन-वचन-काय की एकाग्रता) से जन्म-जन्म के पाप क्षण भर में नष्ट हो जाते हैं जो पाप अज्ञानी प्राणियों के करोड़ों जन्मों तक तप करने पर भी नहीं कटते।

सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति का उपाय – सच्चे शास्त्रों को पढ़ने-पढ़ाने, सुनने-सुनाने तथा बार-बार विचारने, आत्म चिन्तन करने, पाठशाला खुलवाने, शास्त्रदान करने आदि से सम्यग्ज्ञान प्राप्त होता है।

कोटि जन्म तप तपैं, ज्ञान बिन कर्म झरैं जे।
ज्ञानी के छिन माहिं, त्रिगुप्ति तैं सहज टरैं ते॥

सम्यग्चारित्र – शुभाशुभ कर्मों से उपयोग को हटाकर आत्मा के शुद्धपयोग में लगाना सम्यग्चारित्र है। निश्चय सम्यक् चारित्र और व्यवहार सम्यक् चारित्र ये दो सम्यक् चारित्र के भेद हैं। आत्मस्वरूप में लीन होना, निश्चय सम्यक् चारित्र कहलाता है। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पाँचों पापों तथा क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार कषायों का त्याग कर व्रतों को धारण करना व्यवहार सम्यक् चारित्र कहलाता है।

सम्यक् चारित्र की प्राप्ति का उपाय – आत्मा के शुद्धोपयोग में लीन होने से तथा व्रत, समिति, गुप्ति, तप एवं धर्म आदि करने से सम्यक् चारित्र प्राप्त होता है। इस सम्यक् चारित्र से ही संवर व निर्जरा होती है।

शिक्षा – संसार के दु:खों से छूटने का सच्चा उपाय रत्नत्रय ही है। अत: हम सभी को रत्नत्रय धारण करना चाहिए। हमारे मनुष्य जन्म की सफलता भी इसी में है। पं. दौलतराम जी ने छहढाला में रत्नत्रय की महिमा बताते हुये लिखा है-

दौल समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवै।
यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक् नहिं होवै॥
लाख बात की बात यही, निश्चय उर लाओ।
तोरि सकल जग दन्द-फन्द, निज आतम ध्याओ॥

अभ्यास

प्रश्न 1. सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं? भेद लिखिए।
प्रश्न 2. सम्यग्चारित्र किसे कहते हैं?
प्रश्न 3. सम्यग्ज्ञान किसे कहते हैं?
प्रश्न 4. सम्यग्दृष्टि जीव कहाँ-कहाँ जन्म नहीं लेता।
प्रश्न 5. ज्ञान के तीन दोष कौन-कौन से हैं।

महावीर वंदना

जो मोह माया मान मत्सर, मदन मर्दन वीर हैं।
जो विपुल विघ्नों बीच में भी, ध्यान धारण धीर है।। टेक।।
जो तरण-तारण भव-निवारण, भव-जलधि के तीर हैं।
वे वंदनीय जिनेश, तीर्थंकर स्वयं महावीर हैं।। 1।।
जो राग-द्वेष विकार वर्जित, लीन आतम ध्यान में।
जिनके विराट विशाल निर्मल, अचल केवलज्ञान में।। 2।।
युगपद विशद् सकलार्थ झलकें, ध्वनित हों व्याख्यान में।
वे वर्द्धमान महान जिन, विचरें हमारे ध्यान में।। 3।।
जिनका परम पावन चरित, जलनिधि समान अपार है।
जिनके गुणों के कथन में, गणधर न पावैं पार हैं।। 4।।
बस वीतराग-विज्ञान ही, जिनके कथन का सार है।
उन सर्वदर्शी सन्मति को, वंदना शत बार है।। 5।।

पाठ–5

कर्म

कर्म की परिभाषा – जो आत्मा का मूल स्वभाव प्रकट नहीं होने देता, उसे कर्म कहते हैं। जैसे – बहुत सी धूल या मिट्टी उड़कर सूर्य के प्रकाश को ढक देती है, उसी प्रकार लोक में ठसाठस भरी हुई पुद्गल कार्माणवर्गणाएँ रागद्वेषादि के निमित्त से आत्मा के प्रदेशों के साथ मिलकर आत्मा के स्वभाव को ढक देतीं हैं, उन्हीं पुद्गल परमाणुओं को कर्म कहते हैं। वे रागद्वेष के निमित्त से सुख–दु:ख का कारण भी बनतीं हैं।

कर्म के भेद

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय ये आठ कर्म हैं। इसमें से ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय कर्म घातिया तथा शेष कर्म अघातिया कहलाते हैं।

1. ज्ञानावरणी कर्म – जो कर्म आत्मा के ज्ञान गुण को ढकता है (प्रकट नहीं होने देता) उसे ज्ञानावरणी कहते हैं; जैसे– शाश्वत अपना पाठ याद करता है, परन्तु उसे याद नहीं होता, इसमें शाश्वत के ज्ञानावरणी कर्म का उदय समझना चाहिए।

बन्ध के कारण – ज्ञान के साधनों में विघ्न डालना, पुस्तक फाड़ देना, छिपा देना, किसी को नहीं बताना, अपने ज्ञान का गर्व करना, जिनवाणी में संशय करना, अर्थ का अनर्थ करना, गुरु की निन्दा करना, झूठा उपदेश देना आदि कार्यों से ज्ञानावरणी कर्म का बंध होता है। इसके विपरीत विवेकपूर्ण कार्य करने से ज्ञान का विकास होता है।

2. दर्शनावरणी कर्म – जो कर्म आत्मा के श्रद्धा गुण को ढकता है (आत्मा के स्वरूप को प्रकट नहीं होने देता) उसे दर्शनावरणी कर्म कहते हैं; जैसे – जिस प्रकार कोई पहरेदार राजा के दर्शन नहीं होने देता, उसी प्रकार दर्शनावरणी कर्म

आत्म द्रव्य के दर्शन नहीं होने देता; जैसे- रमेश मन्दिर दर्शन के लिए गया, किन्तु ताला लगा पाया, इसमें रमेश के दर्शनावरणी कर्म का उदय समझना चाहिए।

बन्ध के कारण – जिनदर्शन में विघ्न डालना, किसी की आँख फोड़ना, दिन में शयन करना, मुनियों को देखकर घृणा करना, अपनेआप पर गर्व करना इत्यादि कार्यों से दर्शनावरणी कर्म का बन्ध होता है।

3. वेदनीय कर्म – जो आत्मा को सुख-दुःख देता है और अव्याबाध सुख (बाधा रहित) गुण का घात करता है, उसे वेदनीय कर्म कहते हैं। वेदनीय कर्म के दो भेद है- साता वेदनीय और असाता वेदनीय कर्म। सुख-दुःख, साता-असाता वेदनीय कर्म के उदय से होता है; जैसे – शरीर की स्वस्थ्य और अस्वस्थ्य अवस्था।

बन्ध के कारण व भेद – अपने व दूसरे को दुःखी करना, शोक करना, पश्चाताप करना, रोना, मारना, पशु वध करना, बलि चढ़ाना आदि कार्यों से असाता वेदनीय कर्म का बन्ध होता है। दया करना, दान करना, संयम पालना, लोभ न करना, वात्सल्य रखना, वैय्यावृत्ति करना, व्रत पालन करना, प्रभावना करना आदि कार्यों से साता वेदनीय कर्म का बन्ध होता है।

4. मोहनीय कर्म – जो कर्म आत्मा के सम्यक्त्व और चारित्र गुण का घात करता है अथवा जिसके उदय से यह जीव अपने स्वभाव को भूलकर अपने से भिन्न पर वस्तुओं में आसक्ति करता है, उसे मोहनीय कर्म कहते हैं; जैसे – जिस प्रकार शराब प्राणी को उन्मत्त कर देती है, उसी प्रकार मोहनीय कर्म आत्मा को मोहित कर देता है। इस कर्म के निमित्त से प्राणी पर पदार्थों में इष्ट-अनिष्ट की कल्पना कर इष्ट और अनिष्ट आचरण करने लगता है; जैसे- क्रोध, मान, माया, लोभ आदि मोहनीय कर्म के उदय से ही होते हैं; जैसे- प्रकाश ने क्रोध में आकर जिनेश को मार दिया, चोर ने लोभ में आकर लोगों को लूट लिया। इसमें प्रकाश और चोर के मोहनीय कर्म का उदय समझना चाहिए।

बन्ध का कारण – सच्चे देव-शास्त्र-गुरु और धर्म में दोष लगाना, उनके

स्वरूप को बदलना, कुदेव–शास्त्र–गुरु की प्रशंसा या सेवा करना, आगम की मर्यादा का उल्लंघन करना, क्रोधादि कषायें करना इत्यादि कार्यों से मोहनीय कर्म का बन्ध होता है।

5. आयु कर्म – जो कर्म आत्मा को नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव में से किसी एक के शरीर में रोके रखता है अथवा जिस कर्म के उदय से जीव को किसी पर्याय में निश्चित (नियत) समय तक रहना पड़ता है, उसे आयु कर्म कहते हैं; जैसे– जिस प्रकार सांकल में बंधा हुआ या काठ में फंसा हुआ मनुष्य बंध के हटने तक दूसरी जगह नहीं जा सकता, उसी प्रकार आयु कर्म भी प्राणी को मनुष्य आदि के शरीर में रोके रखता है। जब तक एक शरीर की आयु पूरी नहीं हो जाती, तब तक प्राणी दूसरे शरीर में नहीं जा सकता; जैसे– हमारा जीव मनुष्य शरीर में रुका हुआ है और गाय का जीव तिर्यंच के शरीर में रुका हुआ है। मनुष्य और गाय के क्रम से मनुष्य और तिर्यंच आयु कर्म का उदय समझना चाहिए।

बन्ध का कारण व भेद – बहुत हिंसा करना, बहुत आरम्भ करना, बहुत परिग्रह रखना आदि से नरकायु का बंध होता है। मायाचारी करने से तिर्यंचायु का बंध होता है। थोड़ा आरम्भ और थोड़ा परिग्रह रखने से मनुष्यायु का बन्ध होता है। सम्यक्त्व प्राप्ति, व्रतपालन करना, शान्तिपूर्वक दु:ख सहना आदि से देव आयु का बन्ध होता है।

6. नाम कर्म – जो कर्म प्राणियों को तरह–तरह के शरीर, अंगोपांग, आकार आदि रूप–रूपान्तर परिणमाता (करता या बदलता) है, उसे नाम कर्म कहते हैं। जैसे– जिस प्रकार कोई चित्रकार अनेक प्रकार के चित्र बनाता है, कोई मनुष्य का, कोई बैल का, किसी का हाथ लम्बा आदि। इसी प्रकार नाम कर्म प्राणी को कभी घोड़ा, कभी विकलांग, कभी गोरा आदि अनेक रूप परिणमाता है। हमारे आँख, कान, नाक, शरीर आदि सब नाम कर्म के उदय से ही बने है। शुभनाम कर्म से शरीर के अंग सुन्दर एवं सुडौल होते हैं जबकि अशुभ नाम कर्म से असुंदर एवं बेडौल होते हैं।

बन्ध के कारण – मन, वचन, काय को सरल रखना, धर्मात्मा को देख खुश

होना, आंगोपांग का भेद नहीं करना, षोडशकारण भावना भाना आदि कार्यों से शुभ नाम कर्म का बन्ध होता है। त्रियोग को कुटिल रखना, दूसरे को देखकर हंसना, धर्मात्माओं के साथ विसंवाद करना, किसी की नकल करना, आपस में लड़ना और किसी का बुरा सोचना आदि कार्यों से अशुभ नाम कर्म का बन्ध होता है।

7. गोत्र कर्म – जिस कर्म के उदय से प्राणी ऊँच या नीच कुल में जन्म लेता है, उसे गोत्र कर्म कहते हैं; जैसे – जिस प्रकार कुम्हार छोटे या बड़े बर्तन बनाता है, उसी प्रकार गोत्र कर्म इस जीव को ऊँचा या नीचा कुल प्राप्त कराता है। उच्च गोत्र के उदय से लोकमान्य कुल की प्राप्ति होती है तथा नीच गोत्र कर्म के उदय से लोक निन्द्य कुल की प्राप्ति होती है।

बन्ध के कारण – दूसरे की निन्दा करना, अपनी प्रशंसा करना, दूसरे के गुणों को ढाँकना, अपने गैर मौजूद गुणों को प्रकट करना तथा घमण्ड करना आदि कार्यों से नीच गोत्र कर्म का बन्ध होता है। दूसरे की प्रशंसा करना, अपनी निन्दा करना, दूसरे के दोषों को ढाँकना, अपने दोषों को प्रकट करना आदि कार्यों से उच्च गोत्र कर्म का बन्ध होता है।

8. अन्तराय कर्म – जो कर्म, दान, लाभ, भोग, उपभोग में विघ्न डालता है, उसे अन्तराय कर्म कहते हैं। जैसे – जिस प्रकार किसी साधर्मी ने एक पाठशाला को दस हजार रुपया देने की आज्ञा दी, किन्तु मुनीम कुछ गड़बड़ करके उन रुपयों को न दिला कर विघ्न कर देता है, उसी प्रकार अन्तराय कर्म कार्यों में विघ्न किया करता है; जैसे – बालक लड्डू खा रहा था, कुत्ता लड्डू छीन ले गया तो बालक का अन्तराय कर्म का उदय समझना चाहिए।

बन्ध के कारण – दान देने वाले को रोक देना, आश्रितों को धर्मसाधन नहीं करने देना, दूसरे की भोग वस्तु को बिगाड़ देना, किसी को हानि पहुँचाना, किसी के सामर्थ्य को बिगाड़ना आदि कार्यों से अन्तराय कर्म का बन्ध होता है।

कर्म रहित जीव – अरहन्त भगवान चार घातिया कर्मों से रहित हैं तथा सिद्ध भगवान आठों कर्मों से रहित हैं।

लाभ – मोहनीय कर्म के उदय में ही शेष कर्म अपना विशेष प्रभाव दिखाते हैं, इसलिए मोहनीय कर्म के स्वरूप को समझकर उसके अभाव करने का प्रयत्न करना चाहिए जिससे हम सुखी हो सकें।

अभ्यास

प्रश्न 1. कर्म किसे कहते हैं? यह कितने हैं?
प्रश्न 2. ज्ञानावरणी कर्म किसे कहते हैं?
प्रश्न 3. नाम कर्म के प्रभाव लिखिए?
प्रश्न 4. आयु कर्म किसे कहते हैं?
प्रश्न 5. अन्तराय कर्म किसमें बाधा उत्पन्न करता है?

जिनवाणी स्तुति

चरणों में आ पड़ा हूँ, हे द्वादशांग वाणी।
मस्तक झुका रहा हूँ, हे द्वादशांग वाणी।। टेक।।
मिथ्यात्व को नशाया, निज तत्त्व को प्रकाशा।
आपा-पराया-भासा, हो भानु के समानी।।1।।
षट् द्रव्य को बताया, स्याद्वाद को जताया।
भवफन्द से छुड़ाया, सच्ची जिनेन्द्र वाणी।। 2।।
रिपु चार मेरे मग में, जंजीर डाले पग में।
ठाड़े हैं मोक्ष-मग में, तकरार मोसों ठानी।। 3।।
दे ज्ञान मुझको माता, इस जग से तोड़ूँ नाता।
होवे सुदर्शन साता, नहिं जग में तेरी सानी।। 4।।

पाठ – 6

रक्षा बन्धन

वर्तमान चौबीसी के 18वें तीर्थंकर श्री भगवान अरनाथ के तीर्थकाल में मालवा प्रान्त की उज्जयिनी नगरी के राजा श्री श्रीवर्मा ने अकंपनाचार्य (सात सौ शिष्यों) के संघ सहित आगमन का समाचार सुना। राजा उनके दर्शन हेतु अपनी पटरानी श्रीमती व चारों मंत्री बलि, नमुचि, बृहस्पति व प्रह्लाद सहित उपवन में पधारे। आचार्यश्री ने अपने अवधिज्ञान से उन चारों मंत्रियों को मिथ्यात्वी, अभिमानी, द्वेषी जानकर अपने शिष्यों को वाद–विवाद न करने की आज्ञा दी। उस समय जब गुरु ने शिष्यों को आज्ञा दी, तब श्री श्रुतसागर (श्रुतकीर्ति) मुनि नगर में आहार को गए थे। उन्होंने यह आज्ञा नहीं सुनी थी। ध्यानारूढ़ सभी मुनियों को नमस्कार करते हुए सम्राट श्रीवर्मा मंत्रियों सहित वापिस आ रहे थे। रास्ते में मंत्री बोले –राजन्! ये मुनि तो पत्थर के खंभे के समान हैं। न ये बोलते हैं और न ही इनमें कोई ज्ञानी है, इन्होंने कोई आशीर्वाद भी नहीं दिया। शास्त्रों में कहा है कि 'विद्या विहीनाः नराः पशुसमानाः'। ये साधु सब पशु के समान हैं। इस प्रकार मुनियों की हँसी उड़ाते चले आ रहे थे कि रास्ते में ही मुनि श्री श्रुतसागर (श्रुतकीर्ति) जो नगर में आहार चर्या को गए थे, वापस आ रहे थे। राजा ने उन्हें नमस्कार किया। तभी चारों मंत्री बोले– महाराज, यह तो तरुण बैल के समान है। इसका पेट तो बैल के समान फूला है। ऐसा कहते ही मुनि से वाद–विवाद करने लगे तथा मुनि से पराजित हो गए। उन मंत्रियों ने अपने राजा के समक्ष अपमानित हुआ जानकर मुनि से बदला लेने की ठान ली। श्री श्रुतसागर (श्रुतकीर्ति) मुनि ने अपने गुरु को सारा वृत्तांत सुनाया। गुरु की आज्ञानुसार प्रायश्चित लेने हेतु वन में उसी स्थान पर, जहाँ वाद–विवाद हुआ था, वहीं जाकर ध्यान में लीन हो गए। अपमानित चारों मंत्री बदला लेने की दृष्टि से उसी वन में पहुँचे। वहाँ उन्हीं मुनि को तपस्या में ध्यानस्थ देखकर चारों मंत्रियों ने ज्यों ही एक साथ तलवार मारने के लिए उठाई, त्यों ही वनदेवता ने उसी रूप में उन्हें कील दिया। प्रातः होते ही राजा को यह समाचार मिला। राजा ने इस कुकृत्य को धिक्कारते हुए कहा कि इन्हें सूली पर चढ़ाया जाना चाहिए। यह सुनकर मुनि ने उन्हें सूली पर

चढ़ाने से रोक दिया। तब राजा ने मंत्रियों को दण्डस्वरूप देश निकाला दे दिया।

अपमानित मंत्रीगण भ्रमण करते हुए कुरुजांगल देश के रगजपुर (हस्तिनापुर) में राजा पद्मराय के यहाँ पुनः मंत्री पद पर स्थापित हो गए। एक दिन राजा ने मंत्री को बताया कि कुंभपुर नगर का राजा सिंहल, जो मुझे नमस्कार नहीं करता, मैं उसे जीत नहीं सका? तब मंत्रियों ने अपने छलकपट से राजा सिंहल को बंदी बनाकर राजा पद्मराय को सौंप दिया। राजा पद्मराय मंत्री बलि पर बहुत प्रसन्न हुए और बलि से बोले– जो वरदान माँगोगे दूँगा। मंत्री बलि ने अपना वरदान भण्डार में जमा रहने दिया और कहा कि आवश्यकता पड़ने पर ले लूँगा।

एक समय मुनि श्री अकम्पनाचार्य अपने 700 शिष्यों सहित हस्तिनापुर के उपवन में पधारे। समाचार सुनकर मंत्रियों के मन में बदला लेने की भावना उठी। उन्होंने राजा को अपने वचन का स्मरण दिलाकर सात दिन का राज्य माँगा और स्वयं राजा बन गए। राजा पद्मराय अन्तःपुर में चले गये और राजा बलि ने अकम्पनाचार्य आदि सभी मुनियों पर घोर उपसर्ग करना प्रारम्भ कर दिया। उपवन में चारों ओर बाड़ी लगाकर अग्नि जलाकर पशुओं के चर्म, मांस, हड्डियों से होम करने लगा।

दुर्गन्धित वायु से, ध्यानस्थ मुनियों के नाक, गला रुंधने लगे तथा शरीर झुलसने लगा। उपसर्ग जानकर मुनियों ने समाधि धारण कर ली। उस समय मिथिलापुर में ध्यानस्थ मुनि श्री सागरचन्द तप कर रहे थे। उन्होंने अपने अवधिज्ञान से जाना कि श्रवण नक्षत्र में तारा कम्पायमान हो रहा है, मतलब मुनियों पर घोर उपसर्ग हो रहा है। तब उन्होंने अपने निकट बैठे क्षुल्लक श्री पुष्पदंत को धरणीभूषण पर्वत पर ध्यानस्थ मुनिश्री विष्णुकुमार के पास रक्षा के लिए भेजा। श्री विष्णुकुमार मुनि को विक्रिया ऋद्धि सिद्ध थी।

यह समाचार सुनकर श्री विष्णुकुमार मुनि ने अपनी विक्रिया ऋद्धि के बल पर बटुक ब्रह्मचारी का रूप धारण किया और भिक्षा हेतु राजा बलि के दरबार में पहुँचे। बटुक ब्रह्मचारी को देखकर राजा उपहासपूर्वक बोला – जो माँगना है माँग लो? बटुक ब्रह्मचारी ने तीन पग भूमि माँगी। राजा बलि हँसा और बोला मुझे मालूम था कि आपके शरीर की तरह आपकी बुद्धि भी छोटी है। तथास्तु कहने के बाद जैसे ही विष्णुकुमार ने अपना पहला पग बढ़ाया तो सुमेरु पर्वत पर गया और दूसरा

मानुषोत्तर पर्वत पर, अब ब्रह्माण्ड में जमींन शेष नहीं रही। तब बलि से कहा कि एक पग जमींन और चाहिए। तब राजा बलि बोला कि मेरी पीठ पर अपना तीसरा पग रखिए। तीसरा पैर उनकी पीठ पर रखा तो उसका अभिमान चूर-चूर हो गया। मुनि ने अपना रूप प्रकट किया तथा समस्त मुनिसंघ का उपसर्ग दूर कर बंधन मुक्त किया तथा राजा पद्मराय को राज्य दिलाया। राजा पद्मराय ने इस दुष्कृत्य का दण्ड देना चाहा, यह समाचार सुनकर आचार्यश्री ने कहा कि हे राजन्! इन्हें क्षमा करो क्योंकि दया धर्म का मूल है। चारों मंत्रियों ने जैनधर्म स्वीकार किया और आचार्यश्री से श्रावक के व्रत स्वीकार किये।

श्री विष्णुकुमार मुनि ने अपने गुरु के पास जाकर अपने दोषों की आलोचना की और धरणीभूषण पर्वत पर कठोर तप करते हुए ध्यानस्थ हो गए। वह दिन श्रवण नक्षत्र श्रावण माह की पूर्णिमा का था। जिस दिन 701 मुनियों की रक्षा विष्णुकुमार मुनि द्वारा हुई थी। विघ्न दूर होते ही प्रजा ने खुशियाँ मनाई और मुनिसंघ को स्वास्थ्य के अनुकूल आहार दिया तथा वैयावृत्ति की तथा उसी दिन से रक्षाबंधन का पर्व चल पड़ा। रक्षाबन्धन प्रेम का, स्नेह का, परम्परा का और धर्म की रक्षा का पर्व है।

शिक्षा –जिसप्रकार अकम्पानाचार्य पर घोर उपसर्ग आया फिर भी वे अपने धर्म पथ से किंचित् भी डिगे नहीं, उसी प्रकार हम भी धर्म पथ से विचलित न हो। श्रुतसागर जैसे ज्ञानी बनें तथा विष्णुकुमार जैसे धर्म रक्षा के लिए हमेशा तैयार रहें।

अभ्यास

प्रश्न 1. अकम्पनाचार्य कौन थे? तथा उन्होंने शिष्यों को क्या आदेश दिया।

प्रश्न 2. विष्णुकुमार मुनि ने मुनि संघ की रक्षा कैसे की?

प्रश्न 3. वे चार मंत्री कौन थे? जिन्होंने मुनि संघ पर उपसर्ग किया?

प्रश्न 4. रक्षा बंधन की कथा से क्या संदेश मिलता है? अपने शब्दों में लिखिए।

प्रश्न 5. रक्षाबंधन की कथा संक्षिप्त में लिखिए?

पाठ –7

गति

गति अर्थात् अवस्था। जीव जिस पर्याय अर्थात् अवस्था में रहता है, वह उसकी गति कहलाती है। गति नाम कर्म के उदय से प्राप्त होने वाली पर्याय को भी गति कहते हैं। गतियाँ चार होती हैं – नरक गति, तिर्यंच गति, मनुष्य गति और देव गति।

नरकगति – जो जीव नरक गति नामकर्म के उदय से नरक में जन्म लेते हैं, वह नरक गति है। नरक में जीव को नारकी का शरीर धारण करना पड़ता है। नरकों में जीव को दिन–रात असहनीय वेदना भोगनी पड़ती है। तीव्र कषाय एवं बहुत आरम्भ और परिग्रह रखने का भाव नरक गति के बंध का कारण है। नारकी जीव अधोलोक में रहते हैं।

तिर्यंचगति – तिर्यंचगति नामकर्म के उदय से तिर्यचों में जन्म होना, तिर्यंचगति कहलाती है। इससे प्राणी को घोड़ा, गाय, हाथी, विकलत्रय और स्थावर की पर्यायें प्राप्त होती हैं। मायाचारी, छलकपट आदि करने से तिर्यंच गति का बंध होता है। एक इन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जीव तिर्यंच गति में होते हैं। त्रिर्यंच गति के जीव सम्पूर्ण लोक में रहते हैं।

मनुष्यगति – मनुष्यगति नामकर्म के उदय से मनुष्य पर्याय में जन्म होना मनुष्यगति कहलाती हैं। मंद कषाय रूप सरल परिणाम मनुष्य गति के जीव मध्यलोक में रहते हैं तथा थोड़ा आरम्भ और परिग्रह रखने का भाव मनुष्यगति के बंध का कारण है।

देवगति– देवगति नामकर्म के उदय से देवों में जन्म होना देवगति कहलाती है। इससे प्राणी को देव का शरीर धारण करना पड़ता है। इनका वैक्रियिक शरीर होता है। संयमासंयम भाव, परिणामों की कोमलता, अज्ञानता पूर्वक किये गये तपश्चरण आदि देवगति के बंध के कारण हैं। देव गति के जीव ऊर्ध्वलोक में रहते हैं।

मुक्त जीव

सिद्ध या मुक्त जीव किसी भी गति के जीव नहीं हैं, क्योंकि गति की प्राप्ति कर्म के निमित्त से होती है और मुक्तजीव (सिद्ध) के कर्म नहीं होते हैं। इसलिए वे सिद्ध शिला में अशरीर रूप विराजमान हैं।

गतियों में आवागमन

नरक गति से मरकर देवगति में नहीं जाते। देव गति से मरकर नरकगति में नहीं जाते। नरक से मरकर नरक में और देव से मरकर देव में भी उत्पन्न नहीं होते। तिर्यंच व मनुष्य मरकर चारों गति में जा सकते हैं।

सबसे अच्छी गति

सबसे अच्छी गति कोई भी नहीं क्योंकि चारों गतियाँ संसार में भ्रमण का कारण हैं। परन्तु मनुष्य गति में संयम धारण कर सम्यग्दर्शन प्राप्त कर मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं। इस अपेक्षा मनुष्य गति को श्रेष्ठ गति माना गया है।

अभ्यास

प्रश्न 1. गति किसे कहते हैं?
प्रश्न 2. गतियाँ कितनी हैं, परिभाषा सहित भेद लिखो।
प्रश्न 3. सबसे अच्छी कौन-सी गति है और क्यों?
प्रश्न 4. नरक गति कैसे प्राप्त होती है?
प्रश्न 5. कौन जीव मरकर कहाँ पैदा नहीं होता?

गुरु वन्दना

ऐसे साधु सुगुरु कब मिलि हैं।। टेक।।
आप तरें अरु पर को तारें, निष्पृही निर्मल हैं।
तिलतुष मात्र संग नहिं जिनके , ज्ञान-ध्यान-गुण-बल हैं।। 1।।
शांत दिगम्बर मुद्रा जिनकी, मन्दिर तुल्य अचल हैं।
भागचन्द तिनको नित चाहैं, ज्यों कमलनि को अलि हैं।। 2।।

पाठ – 8

जम्बू स्वामी

वर्तमान चौबीसी के अंतिम तीर्थंकर महावीर स्वामी के मोक्ष पधारने के बाद गौतम स्वामी, सुधर्माचार्य तथा जम्बू स्वामी अनुबद्ध केवली हुए। जम्बूस्वामी का जन्म राजगृह नगर में फाल्गुन मास की पूर्णिमा के दिन राजमान सेठ अर्हद्दास के यहाँ हुआ था। इनकी माता का नाम जिनमति था।

श्रेष्ठी पुत्र जम्बूस्वामी का राजा श्रेणिक के दरबार में एवं तत्कालीन समाज में प्रभावी स्थान था। नगर के श्रीमंत अपनी-अपनी गुणवती कन्याओं का विवाह जम्बूस्वामी से कराना चाहते थे। पद्मश्री, कनकश्री, विनयश्री, रूपश्री इन चार कन्याओं के साथ उनकी सगाई भी पक्की हो गई थी। परन्तु जम्बूस्वामी बचपन से ही वैराग्य रस में पगे हुए थे, वे सांसारिक विषयों के मायाजाल में बिल्कुल फँसना नहीं चाहते थे, इसलिए उन्होंने विवाह करने से साफ इन्कार कर दिया। उनके इस निर्णय पर उक्त चार कन्याओं के पिताओं ने कहा कि आप इनके साथ विवाह तो कर लें, चाहे भले ही बाद में दीक्षा ले लेवें, पर विवाह से इन्कार न करें। क्योंकि वे जानते थे कि वे सर्वांग सुन्दरी कन्यायें, अपने रूप और गुणों के द्वारा जम्बूकुमार के मन को अवश्य रंजायमान कर लेंगी और फिर जम्बूकुमार वैराग्य की बातें भूल जावेंगे। बाद में जम्बूकुमार का चारों कन्याओं से विवाह भी हो गया।

विवाह की अगली रात्रि में जब चारों नवपरिणिताओं के साथ जम्बूकुमार थे तब उन चारों नववधुओं ने अपने हाव-भाव, रूप-लावण्य, सेवाभाव एवं बुद्धि-चातुर्य से उनको रिझाने का पूरा प्रयास किया। पर वे जम्बूकुमार के मन को रंचमात्र भी विचलित न कर सकीं। उनके ज्ञान और वैराग्य का प्रभाव तो उस विद्युच्चर नामक चोर पर भी पड़ा। जो उसी रात जम्बूस्वामी के महल में चोरी करने आया था, लेकिन जम्बूकुमार तथा उनकी नव-परिणिता स्त्रियों की चर्चा को सुनकर प्रभावित हो गया।

प्रातःकाल उन चारों नववधुओं की दृष्टि भी विषयकषाय से हटकर वैराग्यमयी हो गयी और जम्बूस्वामी की मुनिदीक्षा के साथ उन चारों ने भी आर्यिका दीक्षा धारण कर ली। इसी प्रकार विद्युच्चर नामक चोर ने भी अपने 500 साथियों के साथ मुनिदीक्षा धारण कर ली और सारा वातावरण वैराग्यमय हो गया। जम्बूस्वामी मुनि अवस्था को

धारणकर निरन्तर आत्मसाधना में मग्न रहने लगे और माघ सुदी सप्तमी के दिन जब उनके गुरु सुधर्माचार्य को निर्वाण हुआ, तब इन्होंने भी केवलज्ञान प्राप्त कर लिया।

केवली जम्बूस्वामी का उपदेश 18 वर्ष तक मगध से लेकर मथुरा तक के प्रदेशों में निरंतर होता रहा और अन्त में उन्होंने चौरासी मथुरा से निर्वाण पद को प्राप्त किया।

अभ्यास

प्रश्न 1. जम्बूकुमार का संक्षिप्त जीवन परिचय लिखिए ?

प्रश्न 2. जम्बूकुमार के माता-पिता का नाम बताइए ?

प्रश्न 3. जम्बूकुमार के गुरु कौन थे? तथा उन्हें निर्वाण कब प्राप्त हुआ?

प्रश्न 4. चोर ने जम्बूकुमार के ज्ञान और वैराग्य से प्रभावित होकर क्या किया?

प्रश्न 5. चारों कन्याओं के नाम बताइए तथा उन्हें वैराग्य कैसे प्राप्त हुआ?

पाठ - 9

देव-शास्त्र-गुरु पूजन

समुच्चय पूजन

(पूजन विधि का सामान्य ज्ञान षट् आवश्यक में प्राप्त किया है, अब यहाँ अध्यापक की सहायता से छात्र मंदिर जी में विधिपूर्वक अष्ट द्रव्य से पूजन करेंगे। पूजन के पाँच अंग होते हैं। आह्वानन, स्थापन, सन्निधिकरणम्, पूजन और विसर्जन।)

स्थापना (दोहा)

देव-शास्त्र-गुरु नमन करि, बीस तीर्थंकर ध्याय।
सिद्ध शुद्ध राजत सदा, नमूँ चित्त हुलसाय।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकर समूह! श्री अनन्तानन्त-सिद्धपरमेष्ठी समूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(अष्टक)

अनादिकाल से जग में स्वामिन, जल से शुचिता को माना।
शुद्ध निजातम सम्यक् रत्नत्रय, निधि को नहीं पहचाना।।
अब निर्मल रत्नत्रय जल ले, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः श्री अनन्तानन्त-सिद्धपरमेष्ठिभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भव-आताप मिटावन की, निज में ही क्षमता समता है।
अनजाने में अबतक मैंने, पर में की झूठी ममता है।।
चन्दन-सम शीतलता पाने, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः श्री अनन्तानन्त-सिद्धपरमेष्ठिभ्यो संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षय पद बिन फिरा, जगत की लख चौरासी योनी में।
अष्ट कर्म के नाश करन को, अक्षत तुम ढिंग लाया मैं।।
अक्षयनिधि निज की पाने, अब श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः श्री अनन्तानन्त-सिद्धपरमेष्ठिभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प सुगन्धी से आतम ने, शील स्वभाव नशाया है।
मन्मथ बाणों से विन्ध करके, चहुँगति दुःख उपजाया है।।
स्थिरता निज में पाने को, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः श्री अनन्तानन्त-सिद्धपरमेष्ठिभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

षट्रस मिश्रित भोजन से, ये भूख न मेरी शांत हुई।
आतम रस अनुपम चखने से, इन्द्रिय मन इच्छा शमन हुई।।
सर्वथा भूख के मेटन को, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः श्री अनन्तानन्त-सिद्धपरमेष्ठिभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जड़दीप विनश्वर को अबतक, समझा था मैंने अजियारा।
निज गुण दरशायक ज्ञानदीप से, मिटा मोह का अंधियारा।।
ये दीप समर्पण करके मैं, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः श्री अनन्तानन्त-सिद्धपरमेष्ठिभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

ये धूप अनल में खेने से, कर्मों को नहीं जलायेगी।
निज में निज की शक्ति ज्वाला, जो राग-द्वेष नशायेगी।।
उस शक्ति दहन प्रकटाने को, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः श्री अनन्तानन्त-सिद्धपरमेष्ठिभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

पिस्ता बादाम श्रीफल लवंग, चरणन तुम ढिंग मैं ले आया।
आतमरस भीने निज गुण फल, मम मन अब उनमें ललचाया।।
अब मोक्ष महाफल पाने को, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः श्री अनन्तानन्त-सिद्धपरमेष्ठिभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्टम वसुधा पाने को, कर में ये आठों द्रव्य लिये।
सहज शुद्ध स्वाभाविकता से, निज में निज गुण प्रकट किये।।
ये अर्घ्य समर्पण करके मैं, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः श्री अनन्तानन्त-सिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाल

देव शास्त्र गुरु बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु भगवान।
अव वरणूँ जयमालिका, करूँ स्तवन गुणगान।।
नशे घातिया कर्म अरहन्त देवा, करें सुर-असुर-नर-मुनि नित्य सेवा।
दरशज्ञान सुखबल अनन्त के स्वामी, छियालिस गुणयुत महाईशनामी।।
तेरी दिव्यवाणी सदा भव्य मानी, महामोह विध्वंसिनी मोक्ष-दानी।
अनेकांतमय द्वादशांगी बखानी, नमो लोक माता श्री जैनवाणी।।
विरागी अचारज उवज्झाय साधू, दरश-ज्ञान-भण्डार समता अराधू।
नगन वेशधारी सु एका विहारी, निजानन्द मंडित मुकति पथ प्रचारी।।
विदेह क्षेत्र में तीर्थंकर बीस राजें, विहरमान वंदूँ सभी पाप भाजें।
नमूँ सिद्ध निर्भय निरामय सुधामी, अनाकुल समाधान सहजभिरामी।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः अनन्तानन्तसिद्ध-परमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालमहार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(छन्द)

देव-शास्त्र-गुरु बीस तीर्थंकर, सिद्ध हृदय बिच धर ले रे।
पूजन ध्यान गान गुण करके, भवसागर जिय तर ले रे।।

पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

पाठ- 10

बारह भावना

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार।। 1।।
दल बल देवी देवता, मात-पिता परिवार।
मरती बिरियाँ जीव को, कोई न राखन हार।। 2।।
दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णावश धनवान।
कहूँ न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान।। 3।।
आप अकेलो अवतरे, मरे अकेलो होय।
यूँ कबहूँ इस जीव को, साथी सगा न कोय।। 4।।
जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपनो कोय।
घर संपति पर प्रकट ये, पर हैं परिजन लोय।। 5।।
दिपै चाम चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह।
भीतर या सम जगत में, और नहीं घिन गेह।। 6।।
मोह-नींद के जोर, जगवासी घूमें सदा।
कर्मचोर चहुँ ओर, सरवस लूटैं सुध नहीं।। 7।।
सत्गुरु देय जगाय, मोह-नींद जब उपशमै।
तब कछु बनै उपाय, कर्म-चोर आवत रुकैं।। 8।।
ज्ञान-दीप तप तेल भर, घर शोधै भ्रम छोर।
या विधि बिन निकसैं नहीं, बैठे पूरब चोर।। 9।।
पंच महाव्रत संरचन, समिति पंच परकार।
प्रबल पंच इन्द्रिय-विजय, धार निर्जरा सार।। 10।।
चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान।
तामें जीव अनादि तैं, भरमत हैं बिन ज्ञान।। 11।।
धन कन कंचन राजसुख, सबहिं सुलभकर जान।
दुर्लभ है संसार में, एक जथारथ ज्ञान।। 12।।
जाँचे सुर तरु देह सुख, चिन्तत चिन्ता रैन।
बिन जाँचै बिन चिन्तये, धर्म सकल सुख दैन।। 13।।

शिखर श्रुत संवर्धन समिति

164/267, हल्दी घाटी, मार्ग, प्रताप नगर, जयपुर - 302033
मो. 89555872717, shikhar.shrutsamvardhan@gmail.com

गतिविधियाँ

- वर्तमान में समिति द्वारा निम्न गतिविधियों का संचालन किया जा रहा है -
- जैन पाठशाला (स्कूल ऑफ जैनिज्म) का सम्पूर्ण देश में संचालन करना।
- प्रतिवर्ष विशिष्ट विद्वानों को आमंत्रित कर शिखर व्याख्यानमाला का आयोजन।
- प्रतिभावान छात्रों को छात्रवृत्ति प्रदान करना।
- धार्मिक सत्साहित्य का प्रकाशन।
- धार्मिक, सामाजिक गतिविधियों का संचालन।
- पाण्डुलिपियों का संरक्षण।
- आचार्यों के मूल ग्रंथों पर शोधकार्य करवाना।
- धार्मिक शिक्षण शिविर आयोजित करना।
- सामाजिक, सांस्कृतिक चेतना के कार्यक्रम।

संजय सेठी
अध्यक्ष
मो. 9314134934

डॉ. बी. सी. जैन
मंत्री
मो. 9414769937

आत्म-चिंतन

हूँ स्वतंत्र निश्चल निष्काम,
ज्ञाता-दृष्टा आतम राम।। टेक।।
मैं वह हूँ जो है भगवान,
जो मैं हूँ वह है भगवान।
अन्तर यही ऊपरी जान,
वे विराग यहाँ राग वितान।। 1।।
मम स्वरूप है सिद्ध समान,
अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान।
किन्तु आश वश खोया ज्ञान,
बना भिखारी निपट अजान।। 2।।
सुख-दुःख दाता कोई न आन,
मोह-राग-रूप दुःख की खान।
निज को निज पर को पर जान,
फिर दुःख का नहीं लेशनिदान।। 3।।
जिन-शिव-ईश्वर-ब्रह्मा-राम,
विष्णु-बुद्ध-हरि जिसके नाम।
राग त्याग पहुँचूँ निजधाम,
आकुलता का फिर क्या काम।। 4।।
होता स्वयं जगत परिणाम,
मैं जग का करता क्या काम।
दूर हटो परकृत परिणाम,
ज्ञायकभाव (सहजानन्द) लखूँ अभिराम।। 5।।